

[2011] 1 एस.सी.आर. 66

सचिव/महाप्रबंधक, चेन्नई सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड एवं एक अन्य

बनाम

एस. कमलावेणी सुंदरम

(2011 की दीवानी अपील संख्या 14)

4 जनवरी, 2011

[आफताब आलम एवं आर.एम. लोढ़ा, न्यायमूर्तिगण]

दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 :

धारा 34 — ब्याज — वादपत्र लौटाए जाने के पश्चात पाँच वर्ष और छह माह बाद पुनः प्रस्तुत किया गया — मूलधन पर ब्याज — अभिनिर्धारित : ब्याज प्रदान किया जाना प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विचारणीय है, यह कोई स्वाभाविक अधिकार नहीं है — धारा 34 न्यायालय को वाद दायर किए जाने से पूर्व की अवधि (पूर्व-विवाद ब्याज) के लिए ब्याज प्रदान करने का अधिकार नहीं देती; ऐसा ब्याज सामान्यतः पक्षकारों के बीच हुए अनुबंध पर निर्भर करता है — उच्च न्यायालय द्वारा वादपत्र की वापसी की तिथि से उसके पुनः प्रस्तुत किए जाने तक की अवधि के लिए ब्याज अदा करने का दिया गया निर्देश निरस्त किया गया — किराया नियंत्रण एवं बेदखली।

उत्तरदाता मकान-मालकिन ने, अपीलकर्ता संख्या 2, जो कि किरायेदार था, की बेदखली के पश्चात 9.9.1998 को बकाया किराये की वसूली तथा उस पर 18% ब्याज प्राप्त करने के लिए वाद दायर किया। कुछ त्रुटियों के कारण वादपत्र 20.1.2000 को लौटा दिया गया। लगभग 5 वर्ष 6 माह के अंतराल के पश्चात उसे 20.7.2005 को पुनः प्रस्तुत किया गया। वाद दिनांक 24.3.2008 को डिक्री किया गया, जिसमें 9.9.1998 से 20.1.2000 तक तथा 21.7.2005 से भुगतान की तिथि तक 6% ब्याज प्रदान किया गया। मकान-मालकिन द्वारा दायर अपील पर उच्च न्यायालय ने वाद दायर किए जाने की तिथि से लेकर डिक्री की तिथि तक 12% ब्याज तथा उसके पश्चात किराये की मूल राशि की वास्तविक वसूली तक 6% ब्याज प्रदान किया।

किरायेदार द्वारा दायर अपील को आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए, न्यायालय द्वारा

अभिनिर्धारित : वाद लंबित रहने की अवधि के लिए ब्याज प्रदान किया जा सकता है, किन्तु

ऐसा प्रत्येक मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किया जाएगा; यह कोई स्वाभाविक अधिकार नहीं है। दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 34 न्यायालय को वाद दायर किए जाने की तिथि से डिक्री की तिथि तक तथा जहाँ डिक्री धनराशि के भुगतान के लिए हो, वहाँ डिक्री की तिथि से भुगतान की तिथि तक ब्याज प्रदान करने का अधिकार देती है। किन्तु यह न्यायालय को वाद दायर किए जाने से पूर्व की अवधि के लिए ब्याज प्रदान करने का अधिकार नहीं देती। ऐसा ब्याज सामान्यतः पक्षकारों के बीच व्यक्त अथवा निहित अनुबंध, अथवा किसी वैधानिक प्रावधान या व्यापारिक प्रथा पर निर्भर करता है। वर्तमान मामले में वादपत्र 20.1.2000 को लौटाए जाने के पश्चात न तो तत्काल और न ही किसी युक्तियुक्त समय के भीतर पुनः प्रस्तुत किया गया। वस्तुतः यह मामला मकान-मालकिन के स्तर पर निष्क्रिय पड़ा रहा और वादपत्र 5 वर्ष 6 माह बाद, अर्थात् 20 जुलाई, 2005 को पुनः प्रस्तुत किया गया। स्पष्टतः, मकान-मालकिन अपने निष्क्रिय रहने अथवा वादपत्र को पुनः प्रस्तुत करने में बरती गई असावधानी का कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सकती। अतः उच्च न्यायालय द्वारा किरायेदार को 20 जनवरी, 2000 से 20 जुलाई, 2005 तक की अवधि के लिए बकाया किराये पर 12% वार्षिक ब्याज अदा करने का दिया गया निर्देश निरस्त किया जाता है। [कंडिका 10-12] [70-जी-एच; 71-ए-डी]

दीवानी अपीलिय क्षेत्राधिकार : 2011 की दीवानी अपील संख्या 14

मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा ए.एस. संख्या 990/2008 में दिनांक 11.3.2010 को पारित निर्णय एवं आदेश से।

के. वी. विश्वनाथन, मैरी मिट्जी, जी. एस. चौहान, शिव प्रकाश पाण्डेय, अपीलकर्ताओं की ओर से।

एस. अरविन्द, वी. बालाचन्द्रन, उत्तरदाता की ओर से।

न्यायालय का निर्णय

आर. एम. लोढा, न्यायमूर्ति द्वारा सुनाया गया : 1. अनुमति प्रदान की जाती है।

2. इस विशेष अनुमति याचिका में विचारणीय संक्षिप्त प्रश्न यह है कि क्या मद्रास उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा द्वितीय अपीलकर्ता को 9 सितम्बर, 1998 से लेकर 24 मार्च, 2008 की डिक्री की तिथि तक किराये की बकाया राशि पर 12% वार्षिक ब्याज अदा करने का निर्देश देना न्यायसंगत था।

3. वर्तमान विवाद के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं। उत्तरदाता—एस. कमलावेनी सुन्दरम् (जिसे आगे “मकान-मालकिन” कहा गया है) ने फरवरी, 1990 में चेन्नई के एम.आर.सी.

नगर, साउथ बीच एवेन्यू स्थित अपनी संपत्ति का भूतल द्वितीय अपीलकर्ता (जिसे आगे "किरायेदार" कहा गया है) को अंग्रेजी कैलेंडर माह के अनुसार देय Rs. 5600/- मासिक किराये पर दिया। किरायेदारी गैर-आवासीय प्रयोजनां, अर्थात् बैंकिंग व्यवसाय चलाने के लिए थी। मकान-मालकिन ने वर्ष 1996 में किरायेदार के विरुद्ध उचित किराया निर्धारण हेतु वाद दायर किया। लघु वाद न्यायालय, चेन्नई ने अपने दिनांक 27 मार्च, 1998 के आदेश द्वारा 28 अक्टूबर, 1996 से प्रभावी 32,356/- रु. प्रति माह उचित किराया निर्धारित किया। सितम्बर, 1998 में किरायेदार ने पट्टे पर ली गई परिसंपत्ति खाली कर दी। तथापि, परिसंपत्ति खाली किए जाने के समय वह किराये की बकाया राशि का देनदार था। मकान-मालकिन ने अपने अधिवक्ता के माध्यम से सूचना पत्र भेजकर किरायेदार से मई, 1998 तक की अवधि के लिए 5,71,832/- रु. की राशि, जो उचित किराया और पूर्व में देय किराये के अंतर के रूप में देय थी, तथा जून, जुलाई और अगस्त, 1998 के महीनों का किराया, किरायेदार द्वारा अग्रिम रूप से जमा 33,600/- रु. का समायोजन करने के पश्चात, अदा करने की मांग की। किरायेदार उक्त सूचना पत्र का पालन करने में विफल रहा और उसने उसकी उपेक्षा की।

4. तत्पश्चात मकान-मालकिन ने दिसम्बर, 1998 में चेन्नई के नगर दीवानी न्यायालय में किरायेदार के विरुद्ध 6,83,346/- रु. की वसूली के लिए वाद दायर किया। मकान-मालकिन ने किरायेदार द्वारा देय मूल किराया राशि 5,71,832/- रु. पर 18% वार्षिक ब्याज की भी मांग की।

5. मकान-मालकिन द्वारा दायर वादपत्र में कुछ त्रुटियाँ थीं और उन त्रुटियों के संशोधन हेतु उसे 20 जनवरी, 2000 को वापस कर दिया गया। तथापि, मकान-मालकिन ने वादपत्र को पाँच वर्ष से अधिक के अंतराल के पश्चात, अर्थात् 20 जुलाई, 2005 को पुनः प्रस्तुत किया। प्रारम्भ में उक्त वाद में किरायेदार के विरुद्ध एकपक्षीय डिक्री पारित कर दी गई थी, किन्तु बाद में एकपक्षीय डिक्री निरस्त किए जाने पर किरायेदार को वाद का प्रतिवाद करने की अनुमति प्रदान की गई।

6. प्रतिवाद के पश्चात चेन्नई के नगर दीवानी न्यायालय के तृतीय अतिरिक्त न्यायाधीश ने 24 मार्च, 2008 को मकान-मालकिन के पक्ष में डिक्री पारित की और किरायेदार को 5,71,832/- रु. की बकाया किराया राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया, जिस पर 9 सितम्बर, 1998 से 21 जनवरी, 2000 तक तथा 21 जुलाई, 2005 से भुगतान की तिथि तक 6% वार्षिक ब्याज देय होगा। किरायेदार को डिक्री की तिथि से उक्त राशि का भुगतान करने के लिए तीन माह का समय दिया गया।

7. मकान-मालकिन ने 24 मार्च, 2008 के निर्णय एवं डिक्री को मद्रास उच्च न्यायालय में चुनौती दी। उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने पक्षकारों को सुनने के

पश्चात मकान-मालकिन द्वारा दायर अपील को आंशिक रूप से स्वीकार किया और किरायेदार को वाद दायर किए जाने की तिथि, अर्थात् 9 सितम्बर, 1998 से 24 मार्च, 2008 तक 12% वार्षिक ब्याज तथा 25 मार्च, 2008 से किराये की मूल राशि की वास्तविक वसूली तक 6% वार्षिक ब्याज का भुगतान करने का निर्देश दिया।

8. 26 जुलाई, 2010 को, विशेष अनुमति से अपील करने की याचिका में सूचना पत्र जारी करते समय, हमारे द्वारा निम्नलिखित आदेश पारित किया गया था—

“याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित अधिवक्ता का निवेदन है कि 20 जनवरी, 2000 से 20 जुलाई, 2005 तक की अवधि के लिए उच्च न्यायालय द्वारा ब्याज प्रदान करने का कोई औचित्य नहीं था, क्योंकि उस अवधि में वादपत्र कुछ त्रुटियों को दूर करने के लिए वादी को वापस कर दिया गया था।

सूचना पत्र जारी किया जाए।

उच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार डिक्री के निष्पादन पर रोक रहेगी, बशर्ते कि याचिकाकर्ता आज से चार सप्ताह के भीतर अधीनस्थ न्यायालय में 7.5 लाख रू. की राशि जमा कर दें।”

9. उत्तरदाता—जो एकमात्र प्रत्यर्थी है—ने प्रतिशपथ-पत्र दायर किया है और मुख्यतः इस आधार पर उच्च न्यायालय के आदेश का समर्थन किया है कि मामले के निर्विवाद तथ्यों एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय ने पक्षकारों के बीच न्यायोचित संतुलन स्थापित किया है, क्योंकि उसने मकान-मालकिन द्वारा दावा किए गए ब्याज से कम ब्याज प्रदान करते हुए भी वाद लंबित रहने की सम्पूर्ण अवधि के लिए ब्याज मंजूर किया।

10. हमने किरायेदार की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता तथा मकान-मालकिन की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना। मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए हम उच्च न्यायालय के आदेश को उस सीमा तक बनाए रखने में असमर्थ हैं, जहाँ उसने 20 जनवरी, 2000 से 20 जुलाई, 2005 तक की अवधि के लिए मकान-मालकिन को ब्याज प्रदान किया है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वादपत्र 20 जनवरी, 2000 को त्रुटियों के संशोधन के पश्चात पुनः प्रस्तुत किए जाने हेतु चेन्नई के सिटी सिविल न्यायालय द्वारा मकान-मालकिन को वापस कर दिया गया था। तथापि, केवल मकान-मालकिन को ज्ञात कारणों से वादपत्र न तो तत्काल और न ही किसी युक्तियुक्त समय के भीतर पुनः प्रस्तुत किया गया। वस्तुतः मामला मकान-मालकिन के स्तर पर निष्क्रिय पड़ा रहा और वादपत्र 20 जुलाई, 2005 को पाँच वर्ष और छह माह के पश्चात पुनः प्रस्तुत किया गया। स्पष्टतः, वादपत्र को पुनः प्रस्तुत करने में अपनी निष्क्रियता अथवा तत्परता के अभाव का लाभ मकान-मालकिन नहीं उठा सकती। यदि उसने वादपत्र को युक्तियुक्त समय के भीतर

पुनः प्रस्तुत कर दिया होता, तो विवाद का निर्णय बहुत पहले हो गया होता। अभिलेख से स्पष्ट है कि वादपत्र 20 जुलाई, 2005 को पुनः प्रस्तुत किया गया और वाद का निर्णय विचारण न्यायालय द्वारा 24 मार्च, 2008 को कर दिया गया। इन परिस्थितियों में 20 जनवरी, 2000 से 20 जुलाई, 2005 तक की अवधि के लिए ब्याज प्रदान किया जाना उचित प्रतीत नहीं होता। हम इस तर्क से सहमत नहीं हैं कि वादपत्र को तत्काल पुनः प्रस्तुत न करने अथवा उसके पुनः प्रस्तुतीकरण में विलम्ब होने के बावजूद मकान-मालकिन को कोई लाभ प्राप्त नहीं हुआ और यद्यपि वह बकाया किराये पर 18% वार्षिक ब्याज की हकदार थी, उच्च न्यायालय ने केवल 12% वार्षिक ब्याज ही प्रदान किया और इस प्रकार न्यायोचित संतुलन स्थापित किया। वादपत्र को पुनः प्रस्तुत करने में विलम्ब से मकान-मालकिन को कोई लाभ हुआ या नहीं, यह कोई महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं है; महत्वपूर्ण यह है कि वाद लंबित रहने की अवधि का ब्याज प्रत्येक मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखकर प्रदान किया जाता है, यह कोई स्वाभाविक अधिकार नहीं है।

11. दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 34 न्यायालय को वाद दायर किए जाने की तिथि से डिक्री की तिथि तक तथा जहाँ डिक्री धनराशि के भुगतान के लिए हो, वहाँ डिक्री की तिथि से भुगतान की तिथि तक की अवधि के लिए ब्याज प्रदान करने का अधिकार देती है। दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 34 न्यायालय को वादपूर्व अवधि के लिए ब्याज प्रदान करने का अधिकार नहीं देती। वादपूर्व ब्याज सामान्यतः पक्षकारों के बीच हुए व्यक्त या निहित अनुबंध अथवा किसी वैधानिक उपबंध या व्यापारिक प्रथा पर निर्भर करता है। जैसा भी हो, हम यह नहीं पाते कि न्यायोचित विचारों के आधार पर मकान-मालकिन 20 जनवरी, 2000 से 20 जुलाई, 2005 तक की अवधि के लिए ब्याज पाने की अधिकारिणी थी।

12. उपर्युक्त चर्चा के परिणामस्वरूप, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है और उच्च न्यायालय द्वारा किरायेदार को 20 जनवरी, 2000 से 20 जुलाई, 2005 तक की अवधि के लिए बकाया किराये पर 12% वार्षिक ब्याज अदा करने का दिया गया निर्देश निरस्त किया जाता है। उपर्युक्त संशोधन के अतिरिक्त, उच्च न्यायालय की डिक्री यथावत् रहेगी। पक्षकार अपने-अपने व्यय स्वयं वहन करेंगे।

आर.पी.

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।